# पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
# तत्त्व-चर्चा, ता. १६-०१-१९९०
# प्रवचन नंबर ५६६b

और क्यों कर्ता नहीं है? (क्यों) कि **तद्रूपो न भवति** (समयसार जयसेनाचार्य टीका गाथा ३२०); उसरूप होता नहीं इसलिए वो रागादि क्रिया करता नहीं। और मोक्ष की कारणभूत जो भावना, निश्चय रत्नत्रय के परिणाम प्रगट होता है, उसको करता नहीं है क्योंकि **तद्रूपो न भवति**। अर्थात् कि त्रिकाली द्रव्य जो सामान्य है वह विषेशरूप होता नहीं, विशेष में जाता नहीं। जो सामान्य स्वभाव छूट जाये और स्वयं विशेषरूप हो जाये तो-तो विशेष को कर सके। परंतु सामान्य अकारक जो स्वभाव है, वह तो सामान्य स्वभाव से स्थित है; विशेष में क्रिया होती है, फिर भी वह विशेष की क्रिया को करता नहीं है, सम्यग्दर्शन आदि (को)। क्यों? (क्योंकि) **तद्रूपो न भवति** - उसरूप होता नहीं इसलिए उसको करता नहीं। मात्र जानता है इतना कहा; मात्र जानता है इतना कहा।

अभी जैसे **तद्रूपो न भवति** है, ऐसे आत्मा पर को जानता नहीं। मगर आत्मा तो आत्मा को ही अभेदरूप से जानता है, पर को जानता नहीं। पर को क्यों जानता नहीं? लोकालोक को क्यों जानता नहीं? आठ कर्म को, राग को क्यों जानता नहीं अथवा भेद को क्यों जानता नहीं? जो परद्रव्य स्वरूप हैं भेद (क्योंकि) **तद्रूपो न भवति**, उनमें तन्मय होता नहीं। रागादि में, देहादि में या लोकालोक में ज्ञान तन्मय होता नहीं। इसलिए ये ज्ञान तन्मय होता नहीं इसलिए पर को जानता नहीं। और ज्ञान ज्ञायक को तन्मय होकर जानता है। ज्ञान जानता तो है, पर को नहीं (बल्कि) स्व को। पर में तन्मय होता नहीं इसलिए पर को जानता नहीं और स्व में तो तन्मय होकर जानता है। इसलिए यह ज्ञान आत्मा को ही जानता है, पर को नहीं। ऐसे आत्मा आत्मा में तन्मय होकर आत्मा को जानता है, तो ये ज्ञान आत्मा का कर्म होता है और उसका कर्ता कहने में आता है। परंतु राग (का) तो कर्ता होता ही नहीं क्योंकि उसमें तन्मय होता नहीं, इसलिए कर्ता-कर्म राग के साथ नहीं है। कर्ता-कर्म कहना हो तो आत्मा के साथ कहो। कर्ता-कर्म अधिकार जो चलता है न, उस अपेक्षा से (कहो)। इसलिए तन्मय होता नहीं इसलिए जानता नहीं है और तन्मय होता नहीं, इसलिए पर का कर्ता नहीं (क्योंकि) परद्रव्य है।

अभी एक विशेष इसमें है कि शास्त्र में तो आता है कि साधक परिणाम को जानता है। १२वीं गाथा में आया, 'व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है' परिणाम को जानता है, तो ये सचमुच में भेद का कथन है। अभेद से तो अभेद आत्मा को जानता है। जब थोड़ा भी भेद पड़ता है तो पर को जानता है, ऐसा व्यवहार खड़ा हो जाता है।

फिर से कहूँ, फिर से। अच्छी बात है, इसलिए। साधक अपने में उत्पन्न होते हुये परिणाम को जानता है, वह भेद में आता है तो जानता है। अभेद में रहता है तो परद्रव्य को

जानता नहीं; परिणाम कहो या परद्रव्य कहो। यह विचार क्यों आया आज? कि माइलधवल में है कि निश्चय से ज्ञान आत्मा को जानता है और व्यवहारनय से देखने में आये तो मतिज्ञान आदि के जो भेद पड़ते हैं वे पर को जानते हैं। ज्ञान जब अंतर्मुख होकर एकाकार होता है, शुद्धोपयोग में लीन हो जाता है तो उसमें, अभेद में भेद दिखता नहीं है। तो फिर भेद दिखता नहीं इसलिए भेद को जानता नहीं। और उपयोग जब छूटता है, सम्यग्दर्शन तो रहता है मगर भेद में आता है जब, तब पर को जानता है। द्रव्य और पर्याय के निर्विकल्पध्यान के समय जो अनन्यपना और अभेदपना है, उस समय पर को जानता नहीं।

मुमुक्षु: यही सही स्वरूप है आत्मा का?

पू. लालचंदभाई: बराबर है! और पर को जानता है वह कब आया? कि भेद पड़े तो।

मुमुक्षु: ये तो दोष हुआ न?

पू. लालचंदभाई: द्रव्य और पर्याय के मध्य भेद पड़ गया तो सविकल्पदशा में आया, तब पर को जानता है। ऐसे व्यवहार से, मतिश्रुत पर को जानता है, केवलज्ञान भी पर को जानता है, यह बात सच्ची है। इतना भेद करो आप, आत्मा से केवलज्ञान को भिन्न करो तो उस केवलज्ञान में पर जानने में आयेगा आपको। पर उस केवलज्ञान को आत्मामय कर दो तो स्व जानने में आएगा, आत्मा जानने में आयेगा। इसलिए साधक की सविकल्पदशा का कथन भी शास्त्र में आते हैं, तब इतना समझना कि यह भेद का कथन है। सम्यग्दर्शन रहता है परंतु चारित्र का दोष आता है।

मुमुक्षु: उसको दोष समझना।

पू. लालचंदभाई: गुण नहीं, दोष है। 'व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान' (समयसार गाथा १२ का शीर्षक) दोष है, गुण नहीं। निर्विकल्पध्यान छूट गया, निश्चय धर्मध्यान छूट गया (और) व्यवहार धर्मध्यान आ गया। परिणति है, यह गौण है। मगर उस शुद्धोपयोग को जो हम निश्चय धर्मध्यान कहते हैं, ऐसे।

मुमुक्षु: दोष हुआ न वो तो?

पू. लालचंदभाई: दोष हुआ। आहाहा! अब, द्रव्य और पर्याय का भेद दिखता है, तब बाहर में मिथ्यात्व कर्म का बंध होता है। यह क्या? यह जरा ले लें शास्त्र के साथ। अभी यह चलता है विषय, भेद-अभेद का विषय चलता है। विचार तो आता है न, सब विचार तो आता है न! स्वाध्याय किसलिए करते हैं? विचार करने के लिए है न, (सिर्फ) पढ़ने में कोई मज़ा नहीं है!

ये लेख है वह मिथ्यादृष्टि का है। क्योंकि ये जो ज्ञान में ज्ञायक का उसको भेद दिखता है, अर्थात् ज्ञान में ज्ञायक तन्मय होकर जानने में आता नहीं, भेद पड़ गया।

मुमुक्षु: पूरा अभेद ज्ञेय जानने में आना चाहिए।

पू. लालचंदभाई: जानने में आना चाहिए। उसके बदले उसको ज्ञान और ज्ञायक का भेद पड़ गया, तो ज्ञान पर को जानने में रुक गया। भेद में पर जानने में आता है। अज्ञानी को भेद पड़ता है तो पर जानने में आता है। समझ में आया? इसमें तो अनुभव नहीं, साध्य की सिद्धि

नहीं। साध्य की सिद्धि नहीं तो क्या है? मिथ्यात्व का कर्म-बंध होता है, इतने में भी! यह विचार पहले आया (और) बाद में वो विचार आए कि ऐसा कैसे है? ये यथार्थ है क्योंकि अनन्य नहीं हुआ न, ज्ञेय नहीं हुआ न, अभेद ज्ञेय नहीं हुआ न।

मुमुक्षु: ज्ञेय तो अभेद ही होता है।

पू. लालचंदभाई: ज्ञेय अभेद ही होता है, ज्ञेय में दो भेद नहीं हैं। द्रव्य और पर्याय (ऐसे) दो ज्ञेय नहीं हैं।

मुमुक्षु: एक ज्ञेय है, एक ही ज्ञेय है, एक अभेद ज्ञेय है।

पू. लालचंदभाई: एक अभेद ज्ञेय है।

मुमुक्षु: हाँ! ज्ञेय अभेद ही होता है।

पू. लालचंदभाई: ज्ञेय अभेद ही होता है।

मुमुक्षु: अभेद होता है तो ही ज्ञेय होता है।

पू. लालचंदभाई: (तो ही) ज्ञेय होता है।

मुमुक्षु: अभेद है। भेद में ज्ञेय नहीं है?

पू. लालचंदभाई: भेद में ज्ञेय नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु: आहाहा! भाई बहुत उत्तम बात है। ये सेटिका की गाथा में लिया है। सेटिका की गाथा में लिया है।

पू. लालचंदभाई: लिया है न! लिया है।

मुमुक्षु: कि वहाँ भेद पड़ता है इसलिए मिथ्यात्व कर्म का बंध होता है। और मिथ्यात्व जाने के बाद जितना भेद पड़ता है उसमें रागादि होते हैं।

पू. लालचंदभाई: उतना रागादि होता है वो बंध का कारण है। वो दोष है न?

मुमुक्षु: यहाँ न्याय का विचार करें तो।

पू. लालचंदभाई: हाँ तो उसमें तो इतना ही मैंने लिया है न, कि ये इसमें कर्म का बंध क्यों होता है, मिथ्यात्व का? कि वो अभेद हुआ नहीं है।

ज्ञायक और ज्ञान को जुदा रखा। एक ज्ञेय, अभेद ज्ञेय होना चाहिए न? वो नहीं हुआ। नहीं हुआ तो क्या होता है? मिथ्यात्व (का) बंध होता है, कर्म (का), दर्शनमोह बंधता है बाहर में। और अभेद होकर वापस भेद में आवे तो चारित्रमोह बंधता है।

मुमुक्षु: सही है! दोष तो दोष ही है न?

पू. लालचंदभाई: दोष तो दोष ही है न!

मुमुक्षु: एक बाजू आप कहते हैं कि मिथ्यात्व गलता है और एक बाजू आप कहते हैं कि मिथ्यात्व बँधता है, वो क्या है?

पू. लालचंदभाई: हाँ! वो गलता है वो अलग बात है और बँधता है वो अलग बात है। आत्मा आत्मा को जानता है अर्थात् पर को जानता नहीं, तो पर को जाननेवाला जो तीव्र मिथ्यात्व था वह 'जाननहार ही जानने में आता है' तो पर को जानने का तीव्र मिथ्यात्व-बंध (का)

अनुभाग कम होने लगा, यहाँ भाव-अनुभाग। समझ गए? और आत्मा आत्मा को जानता है तो पक्ष में आया कि नहीं? तो पक्ष में आया तो इतना मिथ्यात्व तीव्र नहीं होता है यहाँ, मंद होता है, मिथ्यात्व गलता है।

मुमुक्षु: यहाँ तक भी मिथ्यात्व है।

पू. लालचंदभाई: है!

मुमुक्षु: ऐसा कहकर अनुभव कराना है।

पू. लालचंदभाई: अनुभव कराना है, बस, बस। मिथ्यात्व गलता है, ये तो पर की अपेक्षा से अंदर आया तो इतना तो तीव्र मिथ्यात्व तो जाता ही है न, होता ही नहीं है न फिर। निषेध आया न पर को जानने का? पक्ष में आया कि नहीं? तो पक्ष में आया, स्वभाव के पक्ष में आये तो मिथ्यात्व तो है अभी, परंतु वह गल रहा है। वो टल जाएगा, टले।

मुमुक्षु: अभेद होगा तो टल जाएगा।

पू. लालचंदभाई: टल जाएगा। मति-श्रुतज्ञान का भेद पड़ता है, वह पर को जानता है। ओहोहो! अभेद हो जाये मतिश्रुत तो-तो ज्ञान हो गया; तो मति-श्रुत नहीं रहा, वहाँ ज्ञान लिखा है। निश्चय से ज्ञान आत्मा को जानता है और व्यवहारनय से मति-श्रुत आदि के पाँच भेद - मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान - भेद पड़ें तो पर को जाने।

ऐसे ११वीं गाथा में अभेद हो गया। १२वीं गाथा में भेद आया फिर से, तो व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान (कहा)। दोष है बस। ११वीं गाथा में नहीं आया था तब तक मिथ्यात्व का बंध (था)। ११वीं में आया (तो) मिथ्यात्व गया, १२वीं में आया तो चारित्रमोह का बंध (हुआ)। मगर ज्ञान ज्ञायक को जाने तब तन्मय होकर जाने, दूर रहकर न जान सके! तद्रूपो-लीन, तद्रूप लीन हो जाता है।

मुमुक्षु: तद्रूप होकर जाने।

पू. लालचंदभाई: तद्रूप होकर, उसरूप होकर, आत्मारूप होकर।

मुमुक्षु: ज्ञायक ज्ञायक ही है।

पू. लालचंदभाई: **ज्ञायक ज्ञायक ही है। आत्मा का ज्ञान होने से ज्ञान वह आत्मा ही है** (समयसार गाथा ३५६-३६५)। अब इस ज्ञान को आत्मा क्यों कहा? अभेद की अपेक्षा से।

मुमुक्षु: अभेद ज्ञेय की अपेक्षा से।

पू. लालचंदभाई: अभेद ज्ञेय की अपेक्षा से।

मुमुक्षु: फिर ज्ञान नहीं रहा, फिर (तो) आत्मा हो गया।

पू. लालचंदभाई: हाँ! आत्मा हो गया। ज्ञान रहे तो-तो भेद पड़ेगा।

मुमुक्षु: इसमें साध्य की सिद्धि नहीं।

पू. लालचंदभाई: नहीं। वह ज्ञान आत्मापने होता है।

मुमुक्षु: यह सुबह में कलश लिया था बेन ने।

पू. लालचंदभाई: लिया था?

मुमुक्षु: नियमसार का कलश था न १०९। द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! अभी आया था वो ही।

मुमुक्षु: पंचरत्न की गाथा है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! बराबर है। यह ज्ञेय है। यह कलश अपने यहाँ बहुत अच्छा चला था। बहुत अच्छा! धुन चलती थी, उसमें बाहर निकलें तो कलेश-कलेश। भरतभाई को कहना पड़ा (कि) कुछ अच्छा नहीं लगता। आहाहा! कैसा कलश! उसका घोलन चले उसमें विघ्न हो जाता है। वास्तव में एकांत का विषय है ऐसा तो। समपरिणाम के जीव वह एकांत ही है। ऐसा एकांत अर्थात् समपरिणाम के जीव चर्चा करते हों; सर्वार्थसिद्धि में एकांत ही है सभी को।

मुमुक्षु: यहाँ भी आता है, श्रीमद् के पत्र में आता है। ... अभी ही दो दिन पहले (पढ़ा हमने)। समभाववाले जीव हों, समान रुचिवाले तो उनके साथ चर्चा (करना) वह एकांत ही है।

पू. लालचंदभाई: एकांत ही है। बराबर है! ऐसा ही है, वह एकांत है। उसमें दखल न हो ना कुछ। समविचारवाले जीव हों। आहाहा! रेस में जो घोड़े उतरते हैं न, वो एकदम दौड़ते हैं, भागने में ज्यादा फर्क नहीं होता है। नहीं तो इन टट्टुओं को रेस में उतारो तो? वहाँ चलें (क्या) टट्टू?

मुमुक्षु: नहीं चले।

पू. लालचंदभाई: ऐसा, ऐसा है ये। समविचार के जीव, साम्यपरिणामी, सौम्यप्रकृति!

मुमुक्षु: आज सुबह में भी बहुत अच्छा चला।

पू. लालचंदभाई: कलश।

मुमुक्षु: एक ध्येय को जानने पर एक अभेद ज्ञेय जानने में आता है;

पू. लालचंदभाई: हा, बराबर!

मुमुक्षु: तब दो सत् नहीं, तब एक सत् है।

पू. लालचंदभाई: तब अनुभूति होती है।

मुमुक्षु: हाँ! तब। बहुत अच्छा है!

मुमुक्षु: ये नीलम, यह एक जैनदर्शन का रहस्य है। पर्याय से रहित तू श्रद्धान कर, ऐसा कहें, पर्याय तेरे में नहीं, नास्ति है हों! जोर से कहें। सर्वथा भिन्न? कि हाँ सर्वथा भिन्न! ऐसा जहाँ श्रद्धा का विषय श्रद्धा में आया (तो) यहाँ पर्याय से सहित हो गया। साहब! वो तो पर्याय से सहित हुआ। आपने कहा रहितपना, मैं तो सहित हुआ। कि जा! तुझे सम्यग्दर्शन हो गया।

मुमुक्षु: बहुत अच्छा! बराबर! गुरु को भी यही कहना था।

पू. लालचंदभाई: हाँ! गुरु को यही कहना था। अर्थात् कोई जीव प्राप्त करता है इसका कारण यह है।

रहित, बड़ी मुश्किल से तो रहित का पाठ पक्का किया और जहाँ हमने सहित की बात करें तो वह स्वीकारता नहीं है। (यह) पक्ष का मार्ग नहीं है। कहा भाई! ये समझने जैसी बात है चिमनभाई हो! शांतिभाई के पिताजी। हाँ, भाई! समझने जैसी बात है। (चिमनभाई ने कहा कि)

पर्याय से रहित ही होता है, सहित होता ही नहीं आत्मा। पक्ष में आ जाता है, दृष्टि के विषय तक आया जीव परंतु पक्ष में आ गया।

मुमुक्षु: सांख्यमति हो गया, आपने कहा।

पू. लालचंदभाई: सांख्यमति।

मुमुक्षु: सांख्यमति है, अकेले रहित के पक्ष में हो तो।

पू. लालचंदभाई: रहितपूर्वक सहित होता है तब जैनदर्शन, तब जैन होता है। सांख्यमति रहता नहीं और बौद्ध (भी) रहता नहीं।

मुमुक्षु: कोई अद्‌भुत है यह दर्शन!

पू. लालचंदभाई: बौद्ध भी न रहे और सांख्यमति भी नहीं रहे। जैन हो जाये, सच्चा जैन। पर्याय के पक्षवाला बौद्धमति है, द्रव्य के पक्षवाला सांख्यमति है और अनुभवी जैन है। यह कलश है ये।

बहन ने कहा अभी (कि) यह पक्ष का मार्ग नहीं है। बोलीं, बराबर है! पक्ष का मार्ग नहीं।

मुमुक्षु: ये तो जैन बनने का मार्ग है।

पू. लालचंदभाई: जैन बनने का मार्ग है। पक्ष आता है इतनी बात सच्ची है। व्यवहार का पक्ष छूटता है, निश्चय के पक्ष में आता है परंतु पक्षातिक्रांत हो जाए। जब ज्ञेय होता है न तब पक्षातिक्रांत होता है।

मुमुक्षु: यही शब्द आज सुबह में लिए।

पू. लालचंदभाई: यही, बराबर (है) न? ज्ञेय होता है तब पक्षातिक्रांत कहलाता है। यह रहस्य है।

मुमुक्षु: आपने यह रहस्य खोला है बस - ध्येय पूर्वक ज्ञेय।

पू. लालचंदभाई: आठ साल पहले और हकार आया इसको अंदर से। जरा भी आज तक, आज की तारीख तक इसको शंका तो नहीं हुई, परंतु आशंका भी इसने किसी दिन मेरे पास खड़ी नहीं की। आज तक आठ सालों में।

मुमुक्षु: आज तक क्या? अनंतकाल यही रहनेवाला है।

पू. लालचंदभाई: क्योंकि ऐसा स्वरूप है, ऐसा स्वरूप है।

मुमुक्षु: पक्षातिक्रांत स्वरूप है। पक्ष में रहना ये स्वरूप नहीं।

पू. लालचंदभाई: स्वरूप नहीं।

मुमुक्षु: आपने कहा था प्रवचन में कि परिणाम को मैं करता नहीं क्योंकि मैं अपरिणामी हूँ। परिणाम को मैं जानता नहीं क्योंकि मैं परिणामी हूँ। ले! परिणामी को जानता हूँ।

पू. लालचंदभाई: हाँ! परिणामी को। परिणाम को नहीं।

मुमुक्षु: परिणाम को जाने तो-तो सविकल्पदशा है। आहाहा! (तब तो) परद्रव्य को जानता है ये। परिणामी को जानता है (ये सही है)।

पू. लालचंदभाई: परिणाम को क्यों करता नहीं मैं?

मुमुक्षु: क्योंकि अपरिणामी हूँ।

पू. लालचंदभाई: और परिणाम को क्यों जानता नहीं?

मुमुक्षु: क्योंकि मैं परिणामी हूँ और परिणामी को जानता हूँ।

पू. लालचंदभाई: आहाहा! बोलो!

मुमुक्षु: ये नयी लगी बात।

पू. लालचंदभाई: रहस्यवाली बात है। यह बात कोई विरले के पल्ले पड़ती है। या तो इस बाजू ढल जाये या तो उस बाजू ढल जाये।

मुमुक्षु: balance (संतुलन) नहीं रहता।

पू. लालचंदभाई: balance नहीं रहता।

मुमुक्षु: balance रहना चाहिए। आपकी कृपा से ध्येय पूर्वक ज्ञेय की बात बहुत सरल हो गयी है। सब जीवों को समझ में आ सके (ऐसा है)।

पू. लालचंदभाई: समझ में आ सके ऐसा होता है। ऐसा होता है। ये ख्याल में आवे।

मुमुक्षु: ख्याल में लेनेवाला भी महाभाग्यशाली है।

पू. लालचंदभाई: महाभाग्यशाली हो। आहाहा! उसको वास्तव में, वह मध्यस्थ हुआ है, सविकल्प में मध्यस्थ हुआ है।

मुमुक्षु: मध्यस्थ हुआ है। बराबर!

पू. लालचंदभाई: सविकल्प में हो!

मुमुक्षु: हाँ जी! सविकल्प में।

पू. लालचंदभाई: बहन भी सहमत है। वाह! सविकल्प-मध्यस्थ। सविकल्प-स्वसंवेदन आता है न?

मुमुक्षु: हाँ! सविकल्प-मध्यस्थ, बाद में निर्विकल्प में मध्यस्थ होगा। पहले सविकल्प में (मध्यस्थ) होना चाहिए, बाद में निर्विकल्प में होगा।

पू. लालचंदभाई: बात बराबर है!

मुमुक्षु: जब सविकल्प-स्वसंवेदन हो सकता है तो फिर सविकल्प-मध्यस्थ नहीं हो सकता है?

पू. लालचंदभाई: हो सकता, हो सकता है।

मुमुक्षु: होता ही है न। उसकी समझ में आता है।

पू. लालचंदभाई: हाँ! तो समझ में आ गया.....

मुमुक्षु: वो ही न, उसी का नाम सविकल्प-मध्यस्थता है।

पू. लालचंदभाई: सविकल्प-मध्यस्थता (में) आ गया, बाद में निर्विकल्प-मध्यस्थ हो जाता है। क्योंकि ख्याल में तो आता है न कि इस तरह से, अनुभव के काल में इस प्रकार से द्रव्य-गुण-पर्याय से अभेद, **उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्** (तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ५, सूत्र ३०) से अभेद ज्ञेय होता है। तब उसने समयसार भी पढ़ लिया और प्रवचनसार भी पढ़ लिया। तत्त्वार्थ सूत्र तो आ

गया प्रवचनसार के पेटे में। आहाहा! सब पढ़ लिया (उसने)। सांख्यमति नहीं हुआ, बौद्धमति नहीं हुआ, जैन हो गया।

मुमुक्षु: आहाहा! जैन हो गया। प्रभु! आपके प्रताप से जैन हो गया, बस।

पू. लालचंदभाई: चलो आगे।

मुमुक्षु: इसलिए वो बात आपने कही न, तद्रूपो न भवति...

पू. लालचंदभाई: हा।

मुमुक्षु: उन दोनों में न्याय एक जैसा ही है।

पू. लालचंदभाई: दोनों में, हा, दोनों में।

मुमुक्षु: कर्ता नहीं हूँ क्योंकि तद्रूप नहीं होता है इसलिए कर्ता नहीं हूँ।

पू. लालचंदभाई: हा। और देहादि परपदार्थों को, लोकालोक को क्यों नहीं जानता?

मुमुक्षु: तद्रूपो न भवति।

पू. लालचंदभाई: कि तद्रूपो न भवति। तन्मय होता नहीं या तद्रूपो (न भवति), उसका वाच्य तो एक ही है न। शब्द के प्रमाण से इसका जो अर्थ हम करते हैं, घटाते हैं, ये अर्थ तो एक ही है न। तद्रूपो न भवति, उसरूप होता नहीं इसलिए करता नहीं। और तन्मय होता नहीं और उसरूप होता नहीं इसलिए जानता नहीं, ऐसे।

मुमुक्षु: अर्थात् इन दोनों में न्याय एक जैसा है।

पू. लालचंदभाई: न्याय, ये आज ही आया, यह दूसरा न्याय आज ही आया।

मुमुक्षु: दोनों न्याय उनके जयसेन आचार्य के ही हैं।

पू. लालचंदभाई: जयसेन आचार्य, जयसेन आचार्य (के हैं) दोनों न्याय। एक ३२० गाथा में है और एक सेटिका की गाथा में है। तन्मय होता नहीं इसलिए पर को जानता नहीं; और जानता है ऐसा कहना वो व्यवहार है। तन्मय नहीं होता इसलिए। और आत्मा में तन्मय होकर जानता है इसलिए निश्चय है। तन्मय ऊपर ही पूरा वजन उन्होंने दिया है। ये अभी अचानक से ही आ गए दोनों। वो पहले (वाला) तो लेते थे, दूसरा (ये) आज आया। भाई के साथ बात की न, उसके अनुसंधान में आ गया। मैंने भाई को कहा कि आत्मा जाननहार है, करनेवाला नहीं है।